

# मनोरंजन मीडिया का अंतरद्वंद्व

रमेश नैयर\*

मीडिया का धंधा मनोरंजन में लिपटी जानकारी बेचने से बहुत आगे निकल कर केवल मनोरंजन परोसने के दौर में पहुंच गया है। बहुधा मनोरंजन का हाट लगाने वाला यह व्यवसाय विवेक विरोधी और विचार विहीन मालूम पड़ता है। इसका संस्कृति और समाज से कोई सरोकार दिखाई नहीं पड़ता। इसे ऐसा दर्शक श्रोता अथवा पाठक वर्ग चाहिए जो बहुत फुरसत में है और समय बिताने के लिए उसे कोई ऐसा माध्यम चाहिए जो सोचने-विचारने की जहमत न देता हो। इस वर्ग की केवल एक अपेक्षा होती है कि मीडिया उसका दिल बहलाता रहे। कभी हँसा दे, कभी गुदगुदा दे और आसपास के, उनके जीवन के यथार्थ से उठा कर ऐसे लोक में ले जाये जहाँ रूमानियत हो, तिलिस्म हो, उत्तेजना हो, रहास्य-रोमांच हो, कामनाओं की उद्दीप्त करने वाला परिवेश हो और कभी आँसुओं में भिगोने वाली तो कभी कहकहों की संभावना बनाने वाली परिस्थितियाँ बनती रहती हों। कमोबेश इस ढब का मनोरंजन मीडिया हर ओर उपस्थित है, परंतु भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश तथा अरब जगत में खूब फल-फूल रहा है।

## बढ़ता मनोरंजन बाजार

भारत में मनोरंजन के व्यवसाय में जुटे मीडिया का तेजी से विस्तार हो रहा है। इसमें टेलीविजन की भागीदारी सर्वाधिक है। इस मीडिया पर खर्च करने वाले भारतीय परिवारों की संख्या लगातार बढ़ रही है। उपलब्ध ताजा आँकड़ों के अनुसार भारत में मीडिया और मनोरंजन उद्योग प्रतिवर्ष लगभग 13 प्रतिशत की गति से बढ़ रहा है और अब मोबाइल पर 3 जी सेवा शुरू होने के साथ अनुमान लगाया जा रहा है कि इसकी विकास गति और भी तीव्र हो जाएगी। मोबाइल, टीवी, डायरेक्ट टु होम सेवा तथा श्री डी टेलीविजन के बाजार में विस्तार की होड़ के चलते मनोरंजन मीडिया में टेलीविजन की भागीदारी और भी बढ़ने वाली है। समझा जाता है वर्ष 2013 तक भारत में मनोरंजन मीडिया लगभग 21 बिलियन डालर के उद्योग का विशाल आकार ले लेगा।

आँकड़ों के जंजाल में न उलझते हुए मनोरंजन मीडिया पर चर्चा को केंद्रित करें तो चित्र यह उभरता है कि विश्व के जिन देशों में अप्रवासी भारतीय अथवा भारतीय मूल के नागरिक हैं, वहाँ भारत के टेलीविजन कार्यक्रमों का बाजार बन रहा है। लाख पाबंदियों के बावजूद पाकिस्तान में भारत के मनोरंजन मीडिया का बाजार बढ़ रहा है। पाकिस्तान के मनोरंजन मीडिया की भारत में भी पर्याप्त उपस्थिति है, यद्यपि वहाँ बढ़ते हुए कट्टरवाद के दबाव ने मीडिया के चरित्र को इस प्रकार प्रभावित करना शुरू कर दिया है कि भारत में उसकी स्वीकृति पूर्वपेक्षा कम हुई है। यही स्थिति संगीत और रेडियो मनोरंजन उद्योग की भी है। इधर भारत में एफ.एम. रेडियो के लगातार हो रहे विस्तार ने देश में सर्वाधिक पहुंच रखने वाले बेहद सस्ते मनोरंजन माध्यम रेडियो के लिए संभावनाओं का विपुल क्षेत्र खोल दिया है। विकसित देशों में रेडियो के आकर्षण में हुई वृद्धि ने वहाँ के टेलीविजन उद्योग के लिए कुछ चिंता उत्पन्न की है प्रिंट मीडिया के लिए टेलीविजन की चुनौती तो लगभग निष्प्रभावी सिद्ध हुई, परंतु इंटरनेट ने अवश्य खतरे की घंटियाँ बजानी शुरू कर दी हैं। न केवल जानकारी बल्कि मनोरंजन के क्षेत्र में भी डिजिटल मीडिया प्रिंट तथा टीवी मीडिया के लिए तगड़ी चुनौती उत्पन्न कर रहा है। डिजिटल विज्ञापन के बढ़ते हुए चलन से प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की आय भारत एवं एशिया के अन्य देशों में तो विशेष प्रभावित नहीं हुई है परंतु विकसित देशों में निश्चय ही इसका गहरा असर अनुभव किया जा रहा है।

लैपटॉप, डेस्कटॉप और अन्य मोबाइल टीवी उपकरणों पर नये चैनल, नयी टेली सेवाएं और हाईस्पीड ब्रॉड बैंड वायरलेस सुविधा उपलब्ध होने से इन्फोटेनमेंट मीडिया को फैलने का व्यापक क्षेत्र मिल रहा है। भारत के निम्न मध्यमवर्ग और मध्यवर्ग के परिवारों में टेलीविजन की पकड़ को डिजिटल मीडिया अभी कहीं भी ढीली करता प्रतीत नहीं होता, फिर भी टेलीविजन चैनलों के सीरियलों की निरर्थकता एवं फूहड़पन की आलोचना के स्वर कहीं-कहीं सुने जाने

\*संचालक, छत्तीसगढ़ हिन्दी ग्रंथ अकादमी

लगे हैं। जिस प्रकार से अमेरिका तथा यूरोपीय देशों के टेलीविजन कार्यक्रमों के स्वरूप एवं चरित्र में जन-अभिरुचि में हुए परिवर्तन के कारण परिष्कार करना आवश्यक हो गया था, उसी प्रकार भारत के विशाल हिंदी भाषी क्षेत्र में प्रबुद्ध वर्ग अनुभव करने लगा है कि कैसे गलदश्रु भावुकता, अंध विश्वास और फूहड़पन से लबरेज होते जा रहे सीरियलों की जगह सुरुचिपूर्ण तथा स्वस्थ कार्यक्रम उपलब्ध हो सकें। दूरदर्शन के प्रभुत्व के दौर में बने रामायण, महाभारत, हम लोग की शृंखला के कार्यक्रमों के पुनर्निर्माण की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। एक जैसे चेहरे तथा चरित्र वाले सीरियलों से होती जा रही ऊब किसी परिवर्तन की संभावना उत्पन्न कर रही है।

## नई राह की तलाश

दर्शक वर्ग की ऊब का एहसास करते हुए कल्पनाशील टीवी कार्यक्रम निर्माता प्रचलित ढर्रे को तोड़ने की पहल करने लगे हैं। यत्र-तत्र इसके उत्साहवर्धक परिणाम देखे जा रहे हैं। रियल्टी शो के नाम पर जिस प्रकार की भाषा एवं भंगिमा का चलन हो चला है उसे शिष्ट परिवार पसंद नहीं कर रहे हैं। उससे अलग हटकर उपेक्षित कला-प्रतिभाओं को मंच देने के प्रयोग होने लगे हैं। ऐसा एक अनुकरणीय प्रयोग केरल के कोझिकोड में एक सीरियल निर्माता, लेखक, पत्रकार और महत्वाकांक्षी कला प्रेमी सुधीर अंबलपद ने किया है।

सुधीर की न्यूज वेल्यू ऐजेंसी ने सड़कों, रेलगाड़ियों और इसी प्रकार के स्थानों पर घूम-घूमकर गीत सुनाकर आजीविका चलाने वाले निर्धन घुमक्कड़ गायकों को लेकर 100 एपिसोड का एक सीरियल बनाया है, जो खासा चर्चित हो रहा है। इस सीरियल को एक बड़ा दर्शक वर्ग मिल रहा है। फ्रंटलाइन पत्रिका के 23 अप्रैल 2010 अंक में प्रकाशित सैम्युअल अब्राहम के एक फीचर में बताया गया है कि किस प्रकार सुधीर ने निर्धन यायावर गायकों को एक जुट करके टेलीविजन सीरियल तैयार किया। सीरियल का उद्घाटन 2 जून 2009 को साहित्य का प्रतिष्ठित ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त लेखक एमटी वासुदेवन नायर ने किया। प्रसिद्ध कर्नाटक संगीतकार वी दक्षिणमूर्ति उद्घाटन समारोह के विशिष्ट अतिथि थे। समझा जा सकता है कि किस प्रकार की प्रतिष्ठा केरल में इस अपने ढंग के वास्तविक 'रियल्टी शो' सीरियल को मिल रही है। इसमें एक घुमंतू परिवार की दो पीढ़ियों के 17 सदस्य अपनी गायन प्रतिभा प्रस्तुत कर रहे हैं। परिवार के मुखिया चमन लाल गुजरात मूल के हैं। मुहम्मद रुफी का गीत "चल उड़ जा रे पंछी के अब यह देश हुआ बेगाना", वह बड़ी

तन्मयता के साथ गाते हैं। यह गीत उनकी आधी सदी से भी ज्यादा वक्त की खानाबदोशी के दौरान वह बार-बार गाते आए हैं।

मलयालम की भाँति अन्य भारतीय भाषाओं से ऐसे प्रयोग किए जाने की संभावनाएं तलाशने के जो संकेत मिल रहे हैं उनसे टेलीविजन मनोरंजन मीडिया में स्वस्थ मूल्यों के संचार बड़ी उम्मीद बंध रही है। गत डेढ़ दशकों में श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों से टी.वी. सीरियल निर्माताओं ने जो किनाराकशी की है उससे टेलीविजन पर अपसंस्कृति के विस्तार के आरोप लगे हैं, जिन्हें निराधार नहीं कहा जा सकता। बांग्ला, मराठी, कन्नड़, तमिल तथा गुजराती में साहित्यिक कृतियों पर आधारित टीवी कार्यक्रम अभी भी बन रहे हैं, परंतु हिंदी इस मामले में पिछड़ रही है। अलबता हिंदी की फिल्में नये प्रयोग करने और नई थीम तलाशने में आगे बढ़ रही हैं।

## फिल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका

मनोरंजन मीडिया उद्योग में भारतीय फिल्मों की महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रति वर्ष भारत में जिनती फिल्में बनती हैं उतनी अमेरिका सहित विश्व के अन्य किसी देश में नहीं बनतीं। भारतीय फिल्म उद्योग को विदेशी निवेश के लिए खोल दिए जाने के बाद अनेक वैश्विक फिल्म निर्माण संस्थान भारत में निवेश के लिए उत्सुकता दिखा रहे हैं। अनिवासी भारतीय फिल्म निर्माता अमेरिका, ब्रिटेन तथा कनाडा में बसे भारतीय समुदायों के लिए फिल्मों के निर्माण में रुचि ले रहे हैं। भारतीय फिल्म निर्माता भी विदेशी बाजार में अपना आधार तैयार कर रहे हैं। यशराज फिल्मस, रिलायंस-एडलैल्स और यूटीवी अंतरराष्ट्रीय बाजार में विपुल संभावनाएं देखते हुए अन्य देशों में अपनी शाखाएं खोल रहे हैं।

अमेरिका, ब्रिटेन तथा कनाडा में भारतीय फिल्म निर्माता एवं वितरकों को दर्शक भारत तथा पाकिस्तान मूल के लोग ही मिलते हैं। यदा-कदा ही कोई भारतीय फिल्म अमेरिका तथा यूरोपीय देशों की मुख्यधारा के दर्शकों को आकृष्ट कर पाती है। भारत की निर्धनता और सामाजिक विषमता को अतिशयोक्तिपूर्वक कृत्रिम ढंग से पेश करने वाली फिल्मों की वहाँ चर्चा भले ही हो जाती हो तथा उन्हें कुछ पुरस्कार भी मिल जाते हों परंतु उन्हें बाजार नहीं मिल पाता, भारत की शास्त्रीय संगीत पर फिल्मों को एक सीमित दर्शक वर्ग अवश्य नसीब हो जाता है। इसके विपरीत अपनी तकनीकी श्रेष्ठता और उत्कृष्ट निर्माण के कारण हॉलीवुड में निर्मित फिल्मों को भारत में अच्छा बाजार मिलता है। भारतीय भाषाओं में डब की हुई विदेशी फिल्में हमारे यहां अच्छी चलती हैं।

भारत में मनोरंजन मीडिया में निवेश की अनुमति मिलने के बाद रूपक मर्डोक जैसे बहुराष्ट्रीय मीडिया मुगल हमारे यहाँ अच्छा खासा व्यापार कर रहे हैं। जिस प्रकार के सीरियल ये उद्यमी हमारे देश में बनाते हैं उन्हें उनके अपने देश में स्वीकृति नहीं मिल पाती। उनके अधिकतर चैनल विवाहेतर संबंधों पारिवारिक विवादों, षड़यंत्रों एवं ईर्ष्या-द्वेष को परोसते हैं। स्वयं मर्डोक कह चुके हैं कि जिस प्रकार के सीरियल उनकी कंपनियां भारत के बाजार में लाती हैं, उन्हें वह अपने परिवार के बच्चों को नहीं देखने देते। हॉलीवुड की विख्यात और बॉक्स ऑफिस पर हिट होने वाली फिल्मों के निर्माता निर्देशक स्पीलबर्ग एकाधिक बार यह धारणा व्यक्त कर चुके हैं कि वह अपने परिवार के बच्चों को टेलीविजन सीरियल देखने की अनुमति नहीं देते क्योंकि उनका बाल एवं किशोर मन पर अवांछित प्रभाव पड़ता है।

### दायित्वबोध का अभाव

भारतीय फिल्म निर्माताओं पर अक्सर एक आरोप लगता है कि वे राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाभिमान को व्यक्त करने वाली फिल्मों के निर्माण को अपेक्षित महत्व नहीं देते। उनकी दृष्टि व्यवसाय पर केंद्रित रहती है। यह भी कि उनमें राष्ट्रीय तथा सामाजिक दायित्व बोध का अभाव है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से आरंभ हुए राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भारत में जितने महानायक हुए उनमें से अधिकतर को फिल्म एवं टेलीविजन निर्माताओं ने गंभीरता से लिया ही नहीं। हमारे देश का एक भी फिल्म निर्माता स्वातंत्र्य चेतना के 90 वर्षों के अत्यंत महत्वपूर्ण घटनाक्रम पर एक भी ऐसी फिल्म या टेलीविजन सीरियल नहीं बना पाया जो वैश्विक कसौटी पर उत्तम ठहराया जा सके। ब्रिटिश नजरिये से ही सही हॉलीवुड में बनी फिल्म 'गांधी' की बराबरी कर सकने वाली एक भी भारतीय फिल्म किसी भारतीय निर्माता ने नहीं बनाई, विदेश प्रवास के दौरान ब्रिटिश, अमेरिकी, जर्मन और जापनी पत्रकार मित्रों ने भारतीय लेखकों, फिल्म निर्माताओं और प्रबुद्ध वर्ग को अपने राष्ट्र नायकों के प्रति उदासीनता पर उपहास जनक क्षोभ व्यक्त

किया। एक जापानी मित्र ने पूछा कि यदि सुभाषचंद्र बोस, बालगंगाधर तिलक, बिनायक दामोदर सावरकर, लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल तथा गदर आंदोलन के नायक नायक अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी या जापान में, हुए होते तो क्या इसी प्रकार अलक्षित रहे जाते ?

भारत में अपनी फिल्मों और टेलीविजन कार्यक्रमों के परिपक्व मूल्यांकन की प्रवृत्ति इधर विकसित होने लगी है। फिर भी जो श्रेष्ठता बोध अमेरिकी और यूरोपीय समीक्षकों में अपनी फिल्मों को लेकर है वह हमारे यहां पनपना अभी शेष है। ब्रिटेन की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में मनोरंजन मीडिया, विशेषकर फिल्म और थियेटर को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। अमेरिका पत्रिका 'न्यूजवीक' में अक्सर फिल्मों पर विशेष सामग्री प्रकाशित होती रहती है। पिछले दिनों 'न्यूजवीक' ने अल्फ्रेड हिचकाक की क्लासिक फिल्म 'साइको' के निर्माण की आधी सदी पूरी होने पर 'द मदर ऑफ आल हारर फिल्मस' शीर्षक से प्रकाशित आलेख में बताया कि कैसे एक प्रतिभा संपन्न फिल्म निर्माता-निर्देशक बहुत कम समय में मामूली सी लागत पर इतनी उत्कृष्ट फिल्म बना देता है कि 50 वर्ष बीत जाने के बाद भी वह हमारे आज की श्रेष्ठ फिल्म मालूम होती है।

हमारे यहाँ, विशेषकर दक्षिण भारत के आंध्रप्रदेश, तामिलनाडु और कर्नाटक में फिल्मी नायकों के प्रति श्रद्धा का सैलाब रह रह उमड़ता रहता है, परंतु श्रेष्ठ फिल्म निर्माताओं निर्देशकों पटकथा लेखकों की उतनी उदारता से चर्चा नहीं की जाती। गपशप और मसाले में लिपटी हुई जायकेदार सामग्री विपुलता से उपलब्ध है, परंतु हिंदी में जयप्रकाश चौक्से जैसे फिल्मी जानकारों के नाम उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। बड़े कलाकार लेखक, निर्माता और निर्देशक छोटे परदे से जुड़ने लगे हैं, तो यह उम्मीद बन रही है कि मनोरंजन मीडिया उद्योग की तेजी से बढ़ती हुई इस विधा का कद रफ़ता-रफ़ता बड़ा होगा। उसके चरित्र में निखार आएगा। धंधे और मूल्यों का जो द्वंद्व हमारे मनोरंजन मीडिया में चल रहा है उससे अंततः क्या सामने आयेगा, फिलहाल विश्वासपूर्वक नहीं बताया जा सकता।

मैं टेलीविजन को बहुत शिक्षाप्रद मानता हूँ। हर समय जब  
कौई टेलीविजन शुरू करता है, मैं दूसरे कमरे में जाकर  
किताब पढ़ने लगता हूँ।

ग्राउचौ मार्क्स